गीता दर्शन

गुरुजी जी. नारायण की वार्ता
ज्योति जुमानी से

हिन्दी रूपांतरण

अजीत बच्छावत

LA OPALA®

सौजन्य व प्रोत्साहन

La Opala RG Limited

"Chitrakoot", 10th Floor
230A, A. J. C. Bose Road
Kolkata-700020, India
Tel : +91 7604088814/15/16/17
Website : www.laopala.in

आभार ज्ञापन

अहमदाबाद मैनेजमेंट एसोशिएशन

ज्योति जुमानी

ला ओपाला आर जी लिमिटेड

गीता दर्शन

गुरुजी जी. नारायण की वार्ता

ज्योति जुमानी से

हिन्दी रूपांतरण

अजीत बच्छावत

सौजन्य व प्रोत्साहन

LA OPALA®

ला ओपाला

GURUJI G. NARAYANA has adopted a missionary life of contributing and assisting several people, groups, and organizations to experience their own inner light and potential, and to feel at peace and harmony from within.

Mobile : +91 9820731749
Email : narayana.guruji@gmail.com

JYOTI JUMANI, a Chevening Scholar, based in Ahmedabad, is a freelance researcher and writer.

Mobile : +91 9979506063
Landline : +91-79-26403832 and +91-79-26403650
Email : jyotijumani4@gmail.com

गुरुजी जी. नारायण के प्रिय शिष्य अजीत बच्छावत ने गुरुजी की कृपा व शक्ति संप्रेषण से अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद में महारत हासिल की है।

अब तक प्रकाशित पुस्तकें :--
धम्मपद आधारित -- उदात्त नायक
गीता आधारित -- नेतृत्व दर्शन
अभिनेता प्राण की जीवनी--....और प्राण
प्रेरक सूक्तियाँ -- सुप्रभात
प्रकाशनाधीन --
मेवाड़ राजवंश का इतिहास
मोहम्मद रफी की जीवनी
सम्पर्क सूत्र : 90387 87437
Email : ajitbachhawat@gmail.com

प्रस्तावना

श्रद्धास्पद गुरुजी जी. नारायण का सान्निध्य, मार्गदर्शन एवं स्नेह मेरा सौभाग्य है।

ज्ञानी, दृष्टा व योगी गुरुजी ने ग्रन्थों में उल्लेखित सूत्रों का वर्तमान जीवन में व्यावहारिक प्रयोग कर जीवन को किस प्रकार सफल बनाया जा सकता है, इसकी विशद विवेचना की है।

उदाहरण के लिए -- 'क्रोध की अनुभूति होने पर भी क्रोधित होने की बजाय क्रोध का कारण बनी स्थिति को सुधारिये। क्रोध की अनुभूति से उबर कर समस्या को समाहित करना बेहतर विकल्प होता है।'

गुरुजी द्वारा की गयी गीता की संक्षिप्त व सारगर्भित व्याख्या का हिन्दी में सरस भावानुवाद अजीत बच्छावत ने किया है।

इसे सुधी पाठकों तक पंहुचाने का अवसर प्रदान करने हेतु गुरुजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

सुशील झुनझुनवाला
अध्यक्ष
ला ओपाला आर जी लिमिटेड

गीता दर्शन

लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व भरत क्षेत्र के कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उद्‌बोधन है- 'गीता'। कौरवों और पांडवों के बीच ठने इस युद्ध में कृष्ण अर्जुन के सारथी हैं। अर्जुन सहित पांच पांडव भाई और उनके एक सौ चचेरे भाई -- कौरव युद्धभूमि में आमने-सामने डटे हुए हैं। युग का श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन प्रतिपक्ष में अपने सगे-संबंधियों को देखकर युद्ध से विरक्त हो गया। ठीक आक्रमण के समय मोह के वशीभूत होकर अर्जुन दुविधा से घिर गया और उसने अपने चचेरे भाइयों पर वार करने से इंकार कर दिया। उसकी दुविधा दूर करने हेतु कृष्ण ने उसे संबोधित किया, जिससे अर्जुन युद्ध को उद्धत हो गया और पांडव विजयी हुए।

कृष्ण विश्वरूप परमात्मा हैं, जिन्हें सभी श्रद्धा व भक्ति से श्रीकृष्ण कहते हैं। युद्ध के प्रति उदासीन हुए अर्जुन को प्रतिबोधित कर लड़ने को तैयार करने वाले परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं। अकर्मण्यता की बेड़ियों में जकड़े अर्जुन की इन बेड़ियों को श्रीकृष्ण ने काटा। अर्जुन के मस्तिष्क में चल रहे इस द्वंद्व -- मैं अपने निकट सम्बन्धी व प्रिय चचेरे भाइयों से युद्ध कैसे कर सकता हूँ.....उन पर प्रहार करने से तो हार जाना बेहतर

है....मैं युद्ध नहीं लड़ूंगा.....मुझे अपने परिजनों के रक्त से सना सिंहासन व राज्य नहीं चाहिए -- को भी परमात्मा ने समाप्त किया।

कृष्ण के प्रयत्न से ही अर्जुन कर्त्तव्यरत हुआ। वास्तव में यह युद्ध परिजनों व सगे-संबंधियों के बीच नहीं है। यह युद्ध है -- सत्य और असत्य के बीच, भले और बुरे के बीच, दैवी व आसुरी प्रवृत्ति के बीच। संस्कृत में कहें तो धर्म और अधर्म के बीच। धर्म और अधर्म के बीच छिड़े युद्ध में दुविधा, शंका, उदासीनता, हिचकिचाहट व भय का कोई स्थान नहीं है।

(ईस्वी सन् २०१९) विक्रम संवत् २०७६ के (चैत्र) वासंती नवरात्रों में उपवास कर जगत्जननी मां अम्बे की आराधना कर रही ज्योति जुमानी को गुरुजी जी. नारायण ने गीता पर व्याख्यान सुनाया। गीता पर गुरुजी की यह व्याख्या सरल, स्पष्ट व संक्षिप्त है। गुरुजी द्वारा व्याख्यायित गीता का सार जो कि युद्धभूमि में अपने एक सौ चचेरे भाइयों -- कौरवों के साथ युद्ध करने से विमुख हो रहे अर्जुन को कृष्ण द्वारा दिये गये प्रतिबोध-- कृष्ण-अर्जुन संवाद का सार है। गीता जीवनोपयोगी है। पांच हजार वर्ष पूर्व उच्चारित गीता वर्तमान संदर्भ में भी समसामयिक है। गीता कालजयी है। इसका विषय-वस्तु जीवन है।

मानव तन समरांगण सम है, जिसमें प्रतिक्षण वैचारिक

द्वंद्व चलता रहता है। यह द्वंद्व अन्य व्यक्ति से मतभेद के कारण भी हो सकता है अथवा स्वयं अपने ही मन की उहापोह से भी, जो आंतरिक होता है। यह हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा है और इसके अनेक कारण हो सकते हैं। कारणों में व्यक्तिशः भिन्नता होती है। ये कारण अंतहीन व द्वंद्व का औचित्य स्थापित करने वाले होते हैं। द्वंद्व के आधार सही या गलत, नैतिक या अनैतिक, अच्छा या बुरा, सत्य या असत्य के निर्धारण हेतु हो सकते हैं। पूर्ण प्रभाव से देखें तो यह कश्मकश धर्म और अधर्म के बीच की है।

युद्ध का क्या परिणाम होता है? एक पक्ष जीतता है, दूसरा हारता है। जब भी जहां भी युद्ध हुए हैं, उनमें जय-पराजय, लाभ-हानि हुई है। यह हानि जन की भी हो सकती है और धन की भी, मान की भी, प्रतिष्ठा की भी, शान्ति, तृप्ति या प्रसन्नता की भी। ये दृष्टांत दृष्टिगोचर हैं, लुप्त नहीं हुए। हानि का विस्तार वातावरण तक भी हो सकता है। जीतने वाला खुशी से झूम उठता है। परंतु उसे जीत के जुनून में भी मानसिक संतुलन बनाये रखना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि जीत का नशा सर चढ़कर न बोले। पराजित को उदासी घेर लेती है। उदास होने पर भी उसे हताश नहीं होना चाहिए। हानि का शोक या विलाप नहीं करना चाहिए। जो गया सो गया, वह अतीत हो गया, उससे सबक सीखकर उस अनुभव का उपयोग वर्तमान को उन्नत बनाने में करना चाहिए।

परंतु युद्ध का कारण क्या है? प्रत्येक युद्ध किसी की कामना, अभीप्सा व लोभ की पूर्ति हेतु हुआ है। इनका शमन करें। आवश्यकता की पूर्ति उचित है, लोभ व आकांक्षा की नहीं। जब आप अनुचित आकांक्षाओं की पूर्ति के लोभ का संवरण कर अतीत से शिक्षा ग्रहण कर वर्तमान में रहेंगे तो स्वयं को सुदृढ़ महसूस करेंगे। सुदृढ़ होने पर आप सक्षम हो जाएंगे।

कोई व्यक्ति जीवन के संग्राम में सफल कैसे हो सकता है? किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए क्रिया व कर्म अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आप कर्म करने को स्वतंत्र हैं और आपको करने भी चाहिए। परंतु आपके कर्मों की निष्पत्ति क्या होगी, इस पर आपका अधिकार नहीं है। आप अपने कार्यों की गुणवत्ता व मात्रा से तय अपनी पात्रतानुसार फल पा जाएंगे। यह निष्काम कर्म कहलाता है। आपको सदा योगदान का हेतु बनने का प्रयत्न करना चाहिए न कि निष्क्रियता व क्लेश का। जब आप जिम्मेदारी के साथ कार्य करेंगे तो उस कार्य की निष्पत्ति सकारात्मक व आनन्ददायी होगी।

स्वयं अपने तथा औरों के प्रति भी अपने समस्त कर्तव्यों का निर्वहन जिम्मेदारी के साथ करें। मात्र स्वयं की स्वार्थ पूर्ति न करें। सदा क्रियाशील रहें, कभी निष्क्रिय न रहें। निष्क्रियता व्याधि समान है, क्रियाशीलता आराधना है। क्रिया व कर्म से

रहित जीवन अपूर्ण है।

हमारे शरीर में श्रेष्ठतम या महत्तम क्या है? यह शरीर एक मंदिर समान है। इसका प्रत्येक अंग-प्रत्यंग महत्वपूर्ण, आवश्यक, अनिवार्य, अद्‌भुत व महान है। हमारा शरीर कर्म व क्रिया का साधन है। क्रिया -- शारीरिक भी, मानसिक भी। हमारा मस्तिष्क तन से अधिक महत्वपूर्ण है। मस्तिष्क जो हमारा मन है, अनुभूति व भावनाओं का हेतु है। मन से महत्वपूर्ण है -- बुद्धि, जहां विचार पनपते हैं। बुद्धि से महत्वपूर्ण है चैतन्य अंतःकरण, जो आत्मा है। यह अंतःकरण की चेतना आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता परम व श्रेष्ठतम है। विचार, अनुभूति व क्रिया इसमें समाहित है। विचार, अनुभूति तथा क्रियाओं में जिम्मेदारी व जागरूकता आध्यात्मिकता है।

मानव मात्र में ईश्वर का वास है -- अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति में एक कृष्ण है। किसी भी संग्राम या संघर्ष में उचित भी होगा और अनुचित भी, अच्छे और बुरे का विवेचन होगा, सत्य भी होगा और असत्य भी। परमात्मा श्री कृष्ण कहते हैं -- 'जब-जब होता नाश धर्म का और पाप बढ़ जाता है, भारत तब मेरा कोई अवतार भूमि पर आता है', 'संत जनों की रक्षा करने दुष्टों का करने संहार धर्म स्थापना करने मेरा हर युग में होता अवतार।'

मैं जिम्मेदार व्यक्तियों के रूप में आऊँगा। गलत को ठीक करने वाले ये जिम्मेदार व्यक्ति कृष्ण के समान होंगे। ये कृष्ण अपने कार्यों के अनुसार लघु भी हो सकते हैं और वृहत्त भी। परन्तु कार्य बड़े हो या छोटे, कृष्ण तो कृष्ण ही रहेंगे। हर व्यक्ति में एक कृष्ण है -- हमें केवल जीवन पर्यन्त उसे जीवित रखने की जरूरत है। असंतुलित आकांक्षा, लोभ व कामना हर बुराई का कारण है। जिस किसी भी समय, स्थान, स्थिति व व्यक्ति को आवश्यकता पड़ती है, कृष्ण जिम्मेदार व्यक्तियों के रूप में पहुंचकर गलत को ठीक करते हैं। उनका उद्देश्य गलत, बुरे व बेईमान लोगों को उनकी लक्ष्य प्राप्ति से रोकना होता है।

निःस्वार्थ भाव से कार्य करने पर अंतःनिवासित कृष्ण स्पष्ट व दृढ़ता से दृष्टिगोचर होते हैं। निःस्वार्थ कार्य श्रेय व श्रेया की कामना से रहित निरपेक्ष व पवित्र होते हैं। कार्य की शुद्धता या पवित्रता से आशय है कि यह किसी भी प्रकार के भौतिक प्रतिदान या प्राप्ति की कामना से मुक्त है। जो भी कार्य आप करते हैं, उसका प्रतिदान आपकी पात्रतानुसार आपको प्राप्त हो जायेगा। शुद्ध भाव से कार्य करने पर आपकी आत्मा स्वतः शुद्ध हो जायेगी। इस भांति कार्य करने वाले योगी होते हैं। योगी शांत, धर्म केन्द्रित व मुक्ति के आकांक्षी होते हैं। योगी मात्र स्वार्थपूर्ण के लक्ष्य या प्रतिदान की कामना से कार्य नहीं करते। योगी किसी को क्षत, आहत या वंचित नहीं

करते। योगी भय, कामना व क्रोध से मुक्त होते हैं। उनका स्वयं पर नियंत्रण होता है तथा उनके तन व मन में सामंजस्य होता है। अर्थात् योगी के विचार, अनुभूति व क्रिया में एकात्मकता होती है। इसके फलस्वरूप आप देखेंगे कि योगी समान व्यक्ति जो चिंतन व अनुभूत करता है वैसा ही कार्य करता है। उसकी कथनी व करनी में समानता होती है। ऐसे व्यक्ति को मुक्ति बोध होता है। आपका ध्यान केन्द्रित होना चाहिए कार्य व क्रिया पर, न कि उसके प्रतिफल पर। प्रतिफल स्वतः प्राप्त होगा उसकी मांग न करें। अपना प्राथमिक लक्ष्य कार्य-सिद्धि को बनायें न कि प्रतिफल को। निरपेक्ष भाव से कार्य करने पर सफलता के साथ मुक्ति की भी अनुभूति होगी।

कोई व्यक्ति योगी कैसे बनता है? प्रत्येक व्यक्ति को सतत आत्मोन्नति में रत रहना होता है। आप स्वयं अपने परम मित्र भी हो सकते हैं और चरम शत्रु भी। अपने विचारों, अनुभूति व कार्यों पर नियंत्रण रखने पर आप अपने परम मित्र होते हैं और हनुमान की भांति पूज्य हो जाते हैं। जब आपके विचार, अनुभूति व कार्य आपको नियंत्रित करते हैं तो आप अपने चरम शत्रु व साधारण वानर जैसे हो जाते हैं। स्वयं अपने तथा अपने विचारों, अनुभूतियों व कार्यों के स्वामी बनें। वास्तव में जब आप स्वयं के स्वामी होते हैं तो हनुमान तथा स्वयं के स्वामी न होने पर साधारण वानर हो जाते हैं। उदाहरण के लिए क्रोध की अनुभूति होने पर भी आप क्रोधित नहीं होते तो यह आत्म

नियंत्रण है तथा आप स्वयं के स्वामी। क्रोधित होने की बजाय क्रोध का कारण बनी स्थिति को सुधारिये। यह है क्रियाशीलता। क्रोध की अनुभूति से उबर कर समस्या को समाहित करना बेहतर विकल्प होता है। स्वयं अपना स्वामी बनने का प्रयत्न करें। अपने विचारों, अनुभूतियों व क्रियाओं को नियंत्रित करें। निःस्वार्थ भाव व जिम्मेदारी से विचार, अनुभूति व क्रिया में सामंजस्य स्थापित कर की गयी क्रिया यौगिक क्रिया कहलाती है तथा इस रीति से कार्य करने वाले योगी। योगी के विचारों व भावनाओं में नकारात्मकता नहीं आती। ऐसे व्यक्ति ईर्ष्या, डाह, भय, शोक, क्रोध, पीड़ा, दुःख, प्रतिशोध, अवसाद आदि इस प्रकार की सभी नकारात्मक भावनाओं का शमन करने में सक्षम हो जाते हैं। यह सिद्धि स्वतः नहीं मिल जाती। योगी बनने के लिए आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना होगा। जिस स्थिति में अयोगी के मन में क्लेश, क्रोध या प्रतिशोध की भावना आती है, योगी के मन में उस स्थिति में सहानुभूति उपजती है। योगियों में अत्यधिक सहनशक्ति होती है। योगी आत्म नियंत्रित होते हैं और आसानी से भावनाओं में नहीं बहते। वे सुदृढ़ व सक्षम होते हैं।

योगी में एक और गुण प्रकट होता है -- सटीक संतुलन -- न कम, न ज्यादा। पुनः स्वीकारते हैं कि योगी के विचारों, अनुभूति व क्रियाओं में एकात्मकता होती है। वायु वेग से अडोल सतत प्रकाशित दीये के समान होता है--योगी।

हम सुनते आ रहे हैं कि हम सभी में ईश्वर का वास है, यह सत्य है। हर व्यक्ति में ईश्वर का वास है, जिसे हम आत्मा कहते हैं। संयुक्त रूप से सभी व्यक्तियों यानी सभी आत्माओं के मेल से बनता है -- परमात्मा। परमात्मा संपूर्ण ब्रह्माण्ड है। यह सर्वोच्च है। फूलों की माला का एक्स-रे देखने पर दिखेगा कि सभी फूल एक धागे में पिरोये हुए हैं। उस माला के एक फूल पर गौर करने पर आप पायेंगे कि उस धागे का एक अंश उस फूल में है। एक फूल में धागे का सूक्ष्म अंश आत्मा है। संपूर्ण धागा परमात्मा है। इस दृष्टांत से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम सभी में एक ही चेतना का अंश है। पुनः संपूर्ण धागा परमात्मा है तथा उसका सूक्ष्म अंश जो हम सबमें है, वो आत्मा है। परमात्मा और कुछ नहीं, संपूर्ण ब्रह्माण्ड है, जो हमारे हर तरफ है, यह बाह्य है। जो अंतर में है वो आत्मा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाह्य व अंतर एक समान है तथा जो अंतर में है वही बाह्य भी है। आत्मा परमात्मा के समान है। प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्माण्ड यानी परमात्मा का अंश है।

मोटे तौर पर जीवन में ईश्वर से संपर्क साधने वाले व्यक्तियों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :--

१. कष्ट, कठिनाइयों व विपन्नता से त्रस्त होकर ईश्वर को पुकारने वाले,

२. ईश्वर के बारे में जानने की जिज्ञासा रखने वाले,

३. भौतिक सुख-साधन व संपत्ति की आकांक्षा रखने वाले,

४. कुछ भिन्न प्रकार के लोग--ऐसे व्यक्ति ईश्वर को समझते हैं, उस सर्वशक्तिमान से निकटता अनुभूत करते हैं तथा और अधिक निकटता प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं।

ये व्यक्ति भक्त होते हैं। ईश्वर कहते हैं -- ये भक्त मुझसे विभक्त नहीं है, मेरे प्रति पूर्ण समर्पित हैं, योगी हैं। ये मुझे प्रिय हैं तथा इन्हें मैं प्रिय हूँ। हम दोनों में परस्पर प्रेम-संबंध है। हम दोनों एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। ईश्वर यह भी कहते हैं कि मैं माता, पिता, गुरु, बन्धु व सखा हूँ। मैं ही वेद हूं, मैं ही काल, प्रेम, सत्य व जिम्मेदारी हूँ। मैं ही जीवन का पथ हूँ तथा उस पथ पर तुम्हारा सारथी भी हूँ। मैं प्रणव (ॐ) हूं। मैं ॐकार हूँ --ॐ के अन्दर व उससे परे भी जो कुछ भी है, मैं ही हूँ। (·) बिन्दु जो अनन्त है, मैं ही हूं। मैं प्रत्येक प्राणी के अंतर में हूँ। मुझ ॐकार को प्राप्त करने के लिए मेरे प्रति पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है। पूर्ण यानि शुद्ध व निर्मल समर्पण। अपना प्रत्येक कार्य मुझे अर्पित कर दो -- यह है कृष्णार्पण।

ईश्वर की पूर्ण उपासना व भक्ति हेतु व्यक्ति को स्वयं को ईश्वर के प्रति चतुर्आयामी समर्पित करना होता है -- शारीरिक, बौद्धिक, वैचारिक व आत्मिक। ईश्वर को सकारात्मक वस्तुएं ही अर्पित की जा सकती हैं, नकारात्मक नहीं। हाँ हम नकारात्मक को सकारात्मक में परिवर्तित कर अर्पित कर सकते हैं। जैसे -- कूड़ा कर्कट ईश्वर को अर्पित नहीं किया जा सकता, परंतु उस कूड़े को खाद के रूप में प्रयुक्त कर उससे

फूल उपजा कर वे फूल ईश्वर को अर्पित किए जा सकते हैं। श्रेष्ठता प्राप्त करने हेतु प्रयत्न व परिश्रम करें क्योंकि जो श्रेष्ठ है, वो ईश्वर है, जिसमें तेज है वो ईश्वर है। ईश्वर कहते हैं-- हर व्यक्ति में मेरा निवास है, परंतु जो सर्वश्रेष्ठ है वह मेरा प्रतिबिम्ब बन जाता है। हर व्यक्ति को श्रेष्ठता प्राप्त करने की दिशा में कार्य करना चाहिए ताकि वह मेरा प्रतिबिम्ब बन सके। हर व्यक्ति को विचार, अनुभूति, क्रिया व जिम्मेदारी में विशिष्ट बनना चाहिए। ऐसा होने पर ही मेरे ज्यादा से ज्यादा प्रतिबिम्ब दिख सकते हैं। इस प्रकार सार्वभौमिक ईश्वर कृष्ण जीने की राह दिखा रहे हैं।

श्रेष्ठतम, तेजोमय, अद्‌भुत, विशिष्ट, ज्योतिर्मय जैसे शब्दों से ईश्वर को वर्णित या परिभाषित करने पर उसे कल्पना में देखना तो आसान है, परंतु अंतर में विराजित करना कठिन। मनुष्य सदा शंका से घिरा रहता है। मनुष्य ईश्वर की इच्छा को निःशर्त नहीं मानता। उसकी आस्था डगमगाती रहती है। ईश्वर को वास्तविकता में अनुभूत करना, देखना व सान्निध्य प्राप्त करना ही इन शंकाओं के निराकरण या निवारण का एकमात्र उपाय है। यह संभव है क्योंकि ईश्वर हर क्षण हमारे साथ, हमारे अंतर में निवासित है। ईश्वर हमसे जो कराना चाहता है, हम वही करते हैं। हम ईश्वर की इच्छापूर्ति के साधन व निमित्त मात्र हैं। हम ईश्वर के वास्ते ही कार्य करते हैं परंतु हम स्वयं को कर्ता समझ लेते हैं, यह भी ईश्वर की ही

इच्छा से होता है। ईश्वर में ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु समाहित है। जब कृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट स्वरूप (विश्वरूप) का दर्शन कराया तो उस योद्धा के पास नतमस्तक होकर अपनी शंकाओं को त्यागने के सिवा कोई विकल्प नहीं बचा। ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन समर्पित भाव से कर्म करना ही है। ईश्वर हमसे जो कराना चाहता है हम वही करें। जिम्मेदारीपूर्वक चिंतन, अनुभूति व कार्य करके ही हम इस पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। इस प्रकार आप स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि व निमित्त बनाकर अपने अंतर में उसके आसन को अनुभूत करने की स्थिति के निकट आ जाएंगे।

ईश्वर कहते हैं -- जो व्यक्ति एकनिष्ठ भक्ति से मुझ पर ध्यान केन्द्रित करते हुए अपने कार्यों को मुझे समर्पित करते हैं, मैं उनकी उन्नति करता हूं। मैं उनका अभिन्न अंग बन जाता हूं। वे मेरे भक्त बन जाते हैं (अर्थात् मुझसे विभक्त नहीं रहते)। मैं उनकी मुक्ति (मोक्ष प्राप्ति) में सहायक बनता हूं। मेरा भक्त ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, आसक्ति, भय व चिंता से मुक्त रहता है। मेरे भक्त के हृदय में प्रीति, तृप्ति व करुणा का सागर हिलोरे मारता है। मेरे भक्त को संसार से तथा संसार को मेरे भक्त से भय नहीं रहता। मेरा भक्त दुःख में उद्विग्न तथा सुख में उन्मत्त नहीं होता। ऐसा व्यक्ति प्रसन्नवदन व उदार होता है तथा मुझे अत्यंत प्रिय होता है और मैं उसके अन्तर में निवास करता हूँ।

मानव शरीर के सोलह तत्व होते हैं। आत्मा शरीर, मन व बुद्धि की स्वामी होती है। सोलह तत्व हैं -- इन्द्रियाँ, शारीरिक अंग, चिंतन, अनुभूति, स्मृति तथा अहंकार। आसक्त आत्मा जीवात्मा तथा अनासक्त आत्मा परमात्मा है। परमात्मा ज्योतिपुंज है। परमात्मा समस्त ज्ञान है -- जो आप जानते हैं वो भी, तथा जो जानने की जिज्ञासा रखते हैं वो भी। 'सब कुछ' परमात्मा है तथा 'कुछ नहीं' भी परमात्मा ही है। जीवन की यात्रा, आवश्यकता, अनुसंधान व गंतव्य सभी कुछ परमात्मा ही है। हम सभी जीव इस यात्रा, आवश्यकता, अनुसंधान व गंतव्य के यंत्र या निमित्त मात्र ही हैं।

कृष्ण, जो ईश्वर हैं, कहते हैं -- प्रत्येक प्राणी आत्मा है तथा समग्र आत्माओं का योग परमात्मा है, जो कुछ और नहीं बल्कि मैं ही हूं। मात्र वही करो जो मैं तुमसे करवाना चाहता हूँ क्योंकि तुम मेरे विस्तार मात्र हो, मेरे ही अंग हो। यह जीवन यात्रा, आवश्यकता, अनुसंधान व गंतव्य सब कुछ मेरे ही द्वारा निर्धारित हैं, अतः मुझ पर निर्भर रहकर स्वयं निर्भार रहो। तुम प्रत्येक कार्य मेरे ही वास्ते, मेरे ही निमित्त कर रहे हो। अतः परिणाम की परवाह किये बगैर निरपेक्ष भाव से कर्म करते रहो।

प्रवृत्ति की दृष्टि से मनुष्यों में तीन गुण होते हैं -- सत्व, रजस व तमस -- प्रत्येक व्यक्ति में ये तीनों गुण पाये जाते हैं।

हां, व्यक्तिशः इनका अनुपात भिन्न होता है। सत्व प्रवृत्ति वाले व्यक्ति ज्योतिर्मय होते हैं। वे भद्र, शांत, उदार व क्षमाशील होते हैं। हम उन्हें प्रकाशयुक्त इंजन मान सकते हैं। उनकी उत्पादकता की मात्रा व गुणवत्ता दोनों ही उत्कृष्ट होगी। रजस प्रवृत्ति वाले व्यक्ति जोश से भरे हुए (होश से बेपरवाह) सदैव कार्य करने को उद्धत रहते हैं। हम इन्हें बिना प्रकाश का इंजन कह सकते हैं। उनकी उत्पादकता मात्रा में तो अधिक होगी, परंतु गुणवत्ता में कमी पाई जायेगी। तमस प्रवृत्ति वाले व्यक्ति अज्ञानी व आलसी होते हैं। इनके पास न तो प्रकाश है न ही इंजन। इनकी उत्पादकता मात्रा व गुणवत्ता दोनों ही दृष्टिकोण से निकृष्ट होगी।

हर व्यक्ति में सत्व, रजस, तमस तीनों गुण का सम्मिश्रण होता है। जिस गुण की प्रधानता होती है, आमतौर पर व्यक्ति को उसी प्रवृत्ति का वर्णित किया जाता है। लोगों में उसकी वैसी ही पहचान व छवि बन जाती है। एक चौथा आयाम और भी है, जो व्यक्ति को इन तीनों गुणों से भिन्न बनाता है। यह आयाम तूरीया कहलाता है। तूरीया श्रेणी के व्यक्ति सुदृढ़ व सक्षम होते हैं। ये व्यक्ति निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, घात-व्याघात से अप्रभावित रहते हैं। ये अनासक्त व विशुद्ध ज्योति समान होते हैं। ये व्यक्ति फलदायी होने के साथ ही स्वार्थ रहित व स्वयं के लाभ व फल की कामना से मुक्त होते हैं। इस श्रेणी के व्यक्ति शुद्ध समर्पण की भावना से अनासक्त व निरपेक्ष

रहकर कार्य करते हैं। ये आसक्ति व मोह के बन्धन से मुक्त होते हैं। आसक्ति व मोह से मुक्त होने पर व्यक्ति उर्ध्वगामी हो जाता है।

व्यक्ति के गुणों को दो प्रकार से श्रेणीबद्ध किया जा सकता है -- दैवी व आसुरी। दैवी गुणों वाले व्यक्ति होते हैं-- निर्भीक, ज्ञानी, विचार व अनुभूति में पवित्रता लिए हुए, उदार, आत्म नियंत्रित, तपस्वी, सरलमना, अहिंसक, सत्यवादी, क्रोध रहित, त्यागी, शांत, क्षमाशील, ईर्ष्या-द्वेष से दूर, भद्र, विनम्र, तेजस्वी, नियमित, सुदृढ़, सहनशील, धैर्यवान, प्रतिबद्ध, तन-मन व भावनाओं में पवित्रता लिए हुए पवित्रात्मा।

आसुरी गुणों वाले व्यक्तियों की सूची भी इतनी ही लम्बी है, बस वे इन दैवी गुणों वाले व्यक्तियों के विपरीत होते हैं। हर व्यक्ति में कुछ विशेष गुण होते हैं -- सकारात्मक भी, नकारात्मक भी। साधारणतया ये गुण चार प्रकार से विकसित होते हैं। १. जन्मजात, २. वातावरण व संगत के प्रभाव से, ३. आत्मशोधन व आत्मसुधारण से, ४. जीवन में आने वाले अनियोजित व अप्रत्याशित ईश्वर प्रदत्त अवसरों व विघ्न-बाधाओं से।

दैवी गुण उदात्त होते हैं, ये व्यक्ति को उन्नति व मुक्ति प्राप्ति में सक्षम बनाते हैं। आसुरी गुण इनसे विपरीत होते हैं। ये व्यक्ति को बंधन में बांधते हैं, विकास अवरूद्ध कर देते हैं तथा व्यक्ति की अवनति का हेतु बनते हैं। आसुरी गुणों से युक्त

व्यक्ति के लिए मुक्ति मात्र दिवास्वप्न या आकाश कुसुम सा है।

प्रत्येक व्यक्ति कभी शान्त तो कभी संघर्षरत रहता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि संघर्ष स्वयं से भी हो सकता है और औरों से भी। दैवी गुणों वाला व्यक्ति धर्म योद्धा की भांति संघर्ष में शुद्ध साधनों का प्रयोग करता है। दूसरी ओर आसुरी गुणों वाला व्यक्ति अपने हित को साधने के लिए अनैतिक आचरण करता है। जैसे -- किसी को मूर्ख या बेवकूफ बनाकर, तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर या गलत ढंग से प्रस्तुत कर, छल-कपट द्वारा ठगकर, बलात् विवश कर, मिथ्या भाषण कर, विश्वासघात कर अर्थात् किसी भी तरह येन-केन-प्रकारेण अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए किसी भी हद तक नीचे गिर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में अनेक बार संघर्ष करना पड़ता है। उस दौरान उसका आचरण कैसा रहता है यह गौर करने की बात होती है। आप और केवल मात्र आप ही अपने आचरण के लिए जिम्मेदार हैं। संघर्ष में साधन शुद्ध व नैतिक रखिये। संघर्ष में आपकी रीति-नीति व प्रयुक्त साधन का अत्याधिक महत्व है। विजयी होना महत्वपूर्ण है, किन्तु नैतिक व शुद्ध साधनों को प्रयुक्त कर विजयी होना अधिक महत्वपूर्ण है।

अब बात करते हैं समर्पण की। यह तीन तरह का होता

है, जो व्यक्ति की प्रकृति व प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। जैसा कि हम पहले ही विवेचना कर चुके हैं कि सात्विक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति सौम्य, राजसिक वाला उग्र तथा तामसिक वाला अज्ञानी व आलसी होता है। यदि एक सात्विक किसी कार्य को करने का वचन व आश्वासन देता है तो वह बिना किसी स्वार्थ चिंतन के निरपेक्ष भाव से समयबद्ध कार्य पूर्ण करेगा। वहीं एक राजसिक कार्य तो करेगा परंतु अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु भी सजग व सचेष्ट रहेगा। तामसिक कार्य करेगा भी या नहीं इसकी कोई गारंटी नहीं है। राजसिक में सात्विक या तामसिक के गुणों का आंशिक रूप से संक्रमण हो सकता है, जिससे कार्य के प्रति समर्पण व वचनबद्धता की दशा व दिशा प्रभावित होती है तथा निर्धारित होता है कि व्यक्ति ने निःस्वार्थ भाव से कार्य किया या स्वार्थ पूर्ति हेतु अथवा कार्य में ढील ही छोड़ दी।

प्रत्येक कार्य को ॐ से प्रारम्भ करना चाहिये, इससे कार्य शुद्ध व पवित्र हो जाता है। जो भी कार्य आप करें उसे सर्वशक्तिमान ईश्वर को समर्पित कर दें। यह 'तत्' है अर्थात् आप जो कार्य कर रहे हैं वो ईश्वर के निमित्त ही कर रहे हैं और उसे ही समर्पित कर रहे हैं। सत्यनिष्ठा ईश्वर है। जब आप निष्ठापूर्वक कोई कार्य करेंगे तो वह भव्यता व वैभव से जगमगा उठेगा। यह पूर्णता है। ॐ प्रारम्भ है, तत् कृष्णार्पण है तथा सत् है -- सत्यनिष्ठा। इन तीनों का योग निरेपक्षता, निष्ठा व समर्पण के साथ कार्य करना ॐ, तत् व सत् का अंश

बनना है।

मुक्ति महत्वपूर्ण है और इसे प्राप्त करने के लिए बारह कदम उठाने होंगे। ये तन, मन (अनुभूति का स्थान) बुद्धि व आत्मा के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इन्हें शब्दों के रूप में लिखना या उच्चारित करना तो आसान है परन्तु व्यवहारिक प्रयोग हेतु गहन प्रशिक्षण व दृढ़ संकल्प की आवश्यकता होती है। स्वयं की मुक्ति के लिए आपको स्वयं को शिक्षित व प्रशिक्षित करना होगा। मुक्ति हेतु पहला कदम है -- पक्षपात, पूर्वाग्रह, वैर-विरोध व मिथ्या परिभाषाओं से परे होकर (ऊपर उठकर) शुद्धता पूर्वक चिंतन करना। सभी को समानता व स्नेह की दृष्टि से देखना।

दूसरा कदम है--आत्म नियंत्रण। तीसरा कदम है--मौज-मस्ती के साधनों के प्रति आकर्षण कम करना। चौथा कदम है--पसंद-नापसंद (राग-द्वेष), तृष्णा, भेदभाव व घृणा से परे होना। पाँचवा कदम है--स्वयं को एकांतवास हेतु प्रशिक्षित करना व क्रमशः इसमें आनन्द की अनुभूति करना। एकांतवास में शांति, तृप्ति व प्रसन्नता प्राप्त करना। छठा कदम है--मितभोजी बनना। सातवां कदम भी नियंत्रण से ही संबंधित है--नियंत्रित विचार, नियंत्रित अनुभूति तथा नियंत्रित कार्य। आठवां कदम है-चित्त समाधिपूर्वक ॐ के उच्चारण के साथ

ध्यान करना। यह असल, आधारभूत व निर्विकल्प है। नौवां कदम है--स्वयं को संसार से पृथक करने का अभ्यास। दसवां कदम है--उन छः शत्रुओं की पहचान करना जिनसे हमें दूर रहना है। ये हमारे तन, मन व विचारों में डेरा डाले हुए हैं। विचारों में अहंकार व लोभ का जन्म होता है। तृष्णा व क्रोध मन में जड़ें जमाते हैं, उग्रता व उन्माद तन में दृष्टिगोचर होते हैं। इन छः शत्रुओं को स्वयं पर हावी न होने दें। ग्यारहवां कदम पुनः त्याग का है -- 'मैं और मेरा' का त्याग (अर्थात् अहंकार व मोह का त्याग)। जैसे -- मेरा कृतित्व, मेरा नाम, मेरी स्थिति, मेरा कार्य, मेरा संस्थान, मेरा धन, मेरी वस्तु इत्यादि। 'मैं और मेरा' से मुक्त होने की साधना करें। बारहवां कदम है--शान्ति धारण करना। मुक्ति की ओर बढ़ने वाले ये कदम गीता का सार है। आपको इन्हें समझना व जीवन में उतारना तथा इनके व्यावहारिक प्रयोग का अभ्यास करना होगा। इनके आपकी जीवन पद्धति में रच-बस जाने पर ईश्वर आपके अंतर में निवास करेगा।

श्री कृष्ण कहते हैं -- "मेरा आश्रय ले लो, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। मैं तुम्हारी कमियों, खामियों, चिंताओं व समस्याओं को मिटा दूंगा। भय और शोक से मुक्त होकर कर्म करो, मेरे निमित्त कर्म करो।"

अपने चचेरे भाइयों -- कौरवों के रूप में अधर्म से युद्ध के

लिए प्रस्तुत अर्जुन के मन में उठ रहे संकल्प-विकल्प, झिझक, उदासीनता, हिचकिचाहट व दुविधा आदि समस्त नकारात्मकतायें श्रीकृष्ण से गीता सुनकर दूर हो गयी और वह युद्ध के लिए उद्धत हो गया। पांडव युद्ध में विजयी हुए। कृष्ण इस विजय के सारथी हैं। अधर्म की पराजय व धर्म की जय हुई।

अधर्म हारा,
धर्म जीता।